पीठः- रामेश्वर सिंह मलिक, न्यायाधिपति

कार्यकारी अभियन्ता संचालन, उपनगरीय प्रभाग, उत्तर हरियाणा बिजली वितरण निगम लिमिटेड, सोनीपत- याचिकाकर्ता

बनाम

श्रम आयुक्त, हरियाणा एवं अन्य- प्रत्यर्थीगण

सिविल रिट याचिका संख्याएँः- 453 of 2014 और 477 of 2014

13 फ़रवरी, 2015

याचिकाकर्ता के अधिकारियों ने श्रमिकों को 22 वर्षों से अधिक समय तक अधिकतम परेशानी में डाला – 12 वर्षों से अधिक की अवधि समाप्त होने के पश्चात् भी, श्रम न्यायालय का अधिनिर्णय लागू नहीं हुआ, – याचिकाकर्ता निगम के प्रबंधन ने इस पूरी तरह से अनावश्यक मुकदमेबाजी पर सार्वजनिक समय और धन बर्बाद किया – रिट याचिकाएं खारिज की गईं – याचिकाकर्ता-निगम के निदेशक को इस अनचाहे, अनावश्यक और टाले जा सकने वाली मुकदमेबाजी पर खर्च की गई राशि को गलत अधिकारियों से वसूलने की स्वतंत्रता दी गई।

यह अभिनिर्धारित किया गया कि जब श्रम न्यायालय का अधिनिर्णय दिनांक 4.12.2002 वर्तमान याचिकाकर्ता-प्रबंधन के विरुद्ध अंतिम हो गया, तो उसने एक पूर्णतः अनुचित और चतुराईपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया। निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों को पीछे के वेतन से वंचित करने के उद्देश्य से, दिनांक 19.3.2008 का आदेश(अनुलग्नक P-4) पारित किया गया। हालांकि, आदेश दिनांक 19.3.2008(अनुलग्नक P-4) के माध्यम से प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों को पुनर्स्थापित किया गया और उनकी सेवाओं को दिनांक 2.9.1994 से नियमित किया गया,

फिर भी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों को वेतन की बकाया राशि के वास्तविक वित्तीय लाभों से वंचित करने की कोशिश की गई।

(जिम्मन 16)

आगे यह अभिनिर्धारित किया गया कि हालांकि, यह प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता-प्रबंधन के संबंधित अधिकारी न केवल न्यायालयों और न्याय प्रदान प्रणाली को हल्के में ले रहे थे, अपितु स्वयं को कानून से ऊपर मान रहे थे और वे सुधार से परे भी थे। ऐसा इसलिए कहा जाता है, क्योंकि याचिकाकर्ता-प्रबंधन के संबंधित अधिकारी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों को 22 वर्षों से अधिक लंबी अवधि के लिए और विशेष रूप से श्रम न्यायालय के अधिनिर्णय दिनांक 4.12.2002 के पारित होने के पश्चात्, जिसे 12 वर्षों से अधिक की अवधि समाप्त होने के पश्चात् भी उसकी मंशा और भावनास्वरूप लागू नहीं किया गया है,, अधिकतम परेशानी में डालने पर तुले हुए थे। यह केवल दुर्भाग्यपूर्ण ही नहीं अपितु एक आदर्श नियोक्ता की ओर से पूरी तरह से अनुचित है, विशेष रूप से जब वह एक कल्याणकारी राज्य का उपक्रम हो।

(जिम्मन 18)

आगे अभिनिर्धारित किया गया है कि एक आदर्श नियोक्ता के लिए यह उचित नहीं है कि वह अपने कर्मचारियों के साथ वैसा व्यवहार करे जैसा कि याचिकाकर्ता-प्रबंधन ने इस मामले में निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों के साथ किया है। प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों दो दशकों से अधिक समय तक एक वैध और उचित कारण के लिए मुकदमेबाजी कर रहे है। जहां तक दोनों पक्षों की वित्तीय क्षमताओं का प्रश्न है, तो श्रमिक नियोक्ता के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता। यही औद्योगिक विवाद अधिनियम के रूप में लाभप्रद कानूनी व्यवस्था के पीछे की मूल भावना है, जो श्रमिकों के कल्याण के लिए है।

(जिम्मन 26)

आगे अभिनिर्धारित किया गया है कि याचिकाकर्ता-प्रबंधन को इस टाले जा सकने वाले मुकदमेबाजी के प्रत्येक प्रासंगिक चरण पर, औद्योगिक विवाद अधिनियम के वास्तविक उद्देश्य को हराने की दृष्टि से गलत आचरण करते हुए पाया गया है। कानून में यह स्वीकार्य नहीं है। कानून के न्यायालय ऐसी स्थिति में चुप दर्शक नहीं बन सकते। पक्षों के बीच पूर्ण और वास्तविक न्याय करने के लिए न्यायालय का यह परम कर्तव्य है। अपवादों को छोड़कर, न्यायालयों की प्रवृत्ति दबे-कुचले के पक्ष में होनी चाहिए क्योंकि अमीर लंबी मुकदमेबाजी का खर्च उठा सकते हैं लेकिन गरीब नहीं।

(जिम्मन 27)

आगे अभिनिर्धारित किया गया है कि इस मामले में याचिकाकर्ता-प्रबंधन ने इस पूरी तरह से अनावश्यक मुकदमेबाजी पर सार्वजनिक समय और धन बर्बाद किया है, जिसे बार-बार निजी-प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों पर अधिरोपित किया गया है। याचिकाकर्ता-प्रबंधन की ओर से चलाई जा रही यह वर्तमान बेईमान मुकदमेबाजी स्पष्ट रूप से कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। चूंकि इस न्यायालय ने याचिकाकर्ता-प्रबंधन की मंशा को सद्भावनापूर्वक नहीं पाया है और वर्तमान मुकदमेबाजी को लगभग निरर्थक कहा जा सकता है, इसलिए इन दोनों रिट याचिकाओं को खर्चे के साथ खारिज किया जाना चाहिए, ताकि निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों को कम से कम कुछ हद तक मुआवजा दिया जा सके।

(जिम्मन 28)

उपस्थित:- वरिष्ठ अधिवक्ता आर.के. मलिक और अधिवक्ता कुलबीर श्योरान, याचिकाकर्ता की ओर से।

मनोज कुमार सांगवान, उप-महाधिवक्ता हरियाणा।

अधिवक्ता आर.के. बिरबैन, निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों की ओर से।

<u>रामेश्वर सिंह मलिक, न्यायाधिपति</u>

(1) यह याचिकाकर्ता-प्रबंधन के अत्याचार का एक और चमकदार उदाहरण है, ताकि विद्वान औद्योगिक न्यायाधिकरण-सह-श्रम न्यायालय, पानीपत द्वारा पारित अधिनिर्णय के सख्त कार्यान्वयन से बचा जा सके, जो कि निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों के अनुचित उत्पीड़न का कारण बनता है।

(2) उपर्युक्त दो समान रिट याचिकाएं जो एक ही प्रबंधन द्वारा दायर की गई हैं, उन्हें एक साथ निर्णय के लिए प्रस्तावित किया जा रहा है क्योंकि दोनों रिट याचिकाएं समान तथ्यों के सेट पर आधारित हैं और सामान्य मुद्दे उठाती हैं। हालांकि, संदर्भ की सुविधा के लिए, तथ्यों को सिविल रिट याचिका संख्या 453 of 2014 से लिया जा रहा है।

(3) पहले तथ्य, सिविल रिट याचिका संख्या 453 of 2014 में प्रत्यर्थी संख्या 4 से 11 को और सिविल रिट याचिका संख्या 477 of 2014 में प्रत्यर्थी संख्या 4 से 32 को याचिकाकर्ता-प्रबंधन ने दैनिक वेतन पर कलेक्टर दरों पर रोजगार दिया था। दोनों रिट याचिकाओं के निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों की सेवाएं समाप्त कर दी गई थीं। निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों ने मांग नोटिस दिनांक 22.1.1993 के माध्यम से औद्योगिक विवाद उठाया। विद्वान श्रम न्यायालय ने अपने अधिनिर्णय दिनांक 4.12.2002 (अनुलग्नक P-1) के माध्यम से निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों के पक्ष में रेफरेंस का उत्तर देते हुए, सेवा में निरंतरता के साथ पुनर्नियुक्ति और 40% पीछे की मजदूरी के निर्देश दिए। जब याचिकाकर्ता-प्रबंधन ने उपर्युक्त अधिनिर्णय दिनांक 4.12.2002 को न तो चुनौती दी और न ही उसे लागू किया, तो श्रमिकों ने उपर्युक्त अधिनिर्णय के क्रियान्वयन की मांग करते हुए सिविल रिट याचिका संख्या 11022 of 2003 के माध्यम से इस न्यायालय का रुख किया।

(4) इस न्यायालय द्वारा सिविल रिट याचिका संख्या 11022 of 2003 (कर्मबीर सिंह और अन्य बनाम एच.एस.ई.बी. और अन्य) में जारी किए गए नोटिस ऑफ मोशन की तमिल के उपरांत, याचिकाकर्ता-प्रबंधन ने स्वयं को फँसा हुआ पाया, वह जाग गया और सिविल रिट याचिका संख्या 11377 of 2004 (कार्यकारी अभियंता, उत्तर हरियाणा बिजली वितरण निगम लिमिटेड, सोनीपत और अन्य बनाम पीठासीन अधिकारी, औद्योगिक न्यायाधिकरण-सह-श्रम न्यायालय आदि) दायर की, जिसके तहत उपरोक्त अधिनिर्णय दिनांक 4.12.2002 को चुनौती दी जो कि विद्वान श्रम न्यायालय द्वारा पारित किया गया था। इन दोनों रिट याचिकाओं का निर्णय इस न्यायालय की एक खण्ड पीठ द्वारा आदेश दिनांकित 8.10.2004 (अनुलग्नक P-2) द्वारा किया गया। सिविल रिट याचिका संख्या 11022 of 2003 जो कि निजी-प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों द्वारा दायर की गई था, को मंजूरी दी गई, जबकि सिविल रिट याचिका संख्या 11377 of 2004 जो कि वर्तमान याचिकाकर्ता-प्रबंधन द्वारा दायर की गई था, को 10,000/- रुपये के खर्च के साथ खारिज कर दिया गया। याचिकाकर्ता-प्रबंधन ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विशेष अनुमति याचिका दायर की। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आदेश दिनांक 20.1.2005 (अनुलग्नक P-3) के माध्यम से मामूली संशोधन के साथ, कि क्योंकि श्रमिकों ने 22.1.1993 को मांग उठाई थी, इसीलिए उन्हें उसी तारीख से पीछे की मजदूरी का हकदार माना जाएगा, इस न्यायालय की उपर्युक्त खण्ड पीठ के निर्णय को बरकरार रखा गया।

(5) माननीय सर्वोच्च न्यायालय तक असफल रहने पर, याचिकाकर्ता-प्रबंधन ने निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों के साथ एक और चाल चलने की कोशिश की। हालांकि, श्रमिकों को सेवा में पुनः नियुक्त किया गया और उनकी सेवाएं भी नियमित की गईं, फिर भी वेतन की बकाया राशि को निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों को आदेश दिनांक 19.3.2008 (अनुलग्नक P-4) के माध्यम से इनकार किया गया। जब निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों द्वारा बार-बार की

गई गुहार अनसुनी कर दी गई, तो श्रमिकों ने औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 33-C(1) के तहत नोटिस दिनांक 10.4.2012 (अनुलग्नक P-7) के माध्यम से श्रम आयुक्त, हरियाणा-प्रत्यर्थी संख्या 1 का रुख कर अपनी देय राशि का दावा किया जो कि अवैध रूप से याचिकाकर्ता-प्रबंधन द्वारा रोकी गई थी। नतीजतन, प्रत्यर्थी संख्या 1 ने 29.8.2012 को श्रमिकों की बकाया देनदारियों की वसूली के लिए और नियोक्ता-याचिकाकर्ता के विरुद्ध दायर की गई पहले की कार्यवाही को फिर से जीवित करने के लिए, याचिकाकर्ता-प्रबंधन को संचार (अनुलग्नक P-8) जारी किया।

(6) याचिकाकर्ता-प्रबंधन ने श्रम आयुक्त, हरियाणा-प्रत्यर्थी संख्या 1 के समक्ष उपस्थित होकर अनुलग्नक P-9 के माध्यम से अपना जवाब प्रस्तुत किया। प्रत्यर्थी संख्या 1 ने उप-श्रम आयुक्त, रोहतक से रिपोर्ट मांगी, जिन्होंने दोनों पक्षों को सुनने के बाद, अपनी विस्तृत रिपोर्ट दिनांक 27.2.2012 (अनुलग्नक P-13) के साथ सिविल रिट याचिका संख्या 477 of 2014 श्रम आयुक्त, हरियाणा-प्रत्यर्थी संख्या 1 को प्रस्तुत की। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि चूंकि याचिकाकर्ता-प्रबंधन उपर्युक्त अधिनिर्णय दिनांक 4.12.2002, जो कि विद्वान श्रम न्यायालय, द्वारा पारित किया गया था, को लागू नहीं कर रहा था, तो हरियाणा सरकार (श्रम विभाग) ने अपने आदेश दिनांक 17.11.2003 के द्वारा याचिकाकर्ता-प्रबंधन के जिम्मेदार अधिकारी के अभियोग के लिए स्वीकृति प्रदान की और श्रम निरीक्षक सोनीपत को औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 29 के तहत सोनीपत के इलाका मजिस्ट्रेट की अदालत में याचिकाकर्ता-प्रबंधन के भूलकर्ता/जिम्मेदार अधिकारी के खिलाफ शिकायत दर्ज करने की अनुमति प्रदान की।

(7) तदनुसार, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सोनीपत की अदालत में एक शिकायत दायर की गई। शिकायत का सामना करते हुए, याचिकाकर्ता-प्रबंधन ने श्रम विभाग के

अधिकारियों को गुमराह करने की कोशिश की, संचार (अनुलग्नक P-12) दिनांकित 3.12.2008 के माध्यम से प्रत्यर्थी संख्या 1 को लिखकर, यह दावा करते हुए कि श्रम न्यायालय का अधिनिर्णय दिनांक 4.12.2002 लागू किया जा चुका है, शिकायत दिनांक 29.7.2004 की वापसी का अनुरोध किया। याचिकाकर्ता-प्रबंधन द्वारा गुमराह किए जाने पर, श्रम विभाग ने अपने आदेश दिनांक 11.5.2009 (अनुलग्नक P-13) के माध्यम से शिकायत वापस लेने का निर्णय लिया और अंततः आदेश दिनांक 25.7.2009 (अनुलग्नक P-14) के माध्यम से विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सोनीपत द्वारा शिकायत को वापस लेने का आदेश पारित किया गया। हालांकि, श्रम न्यायालय का अधिनिर्णय दिनांक 4.12.2002, वास्तव में, उसकी मंशा और भावनास्वरूप, जैसा कि इस न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा उसके निर्णय दिनांक 8.10.2004 में निर्देशित किया गया था और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उसके आदेश दिनांक 20.1.2005 में संशोधित किया गया था, लागू नहीं किया गया था।

(8) अंततः प्रत्यर्थी संख्या 1 ने उप-श्रम आयुक्त रोहतक द्वारा दी गई उपरोक्त विस्तृत रिपोर्ट के आधार पर, आदेश दिनांक 8.2.2013 (अनुलग्नक P-10) के माध्यम से याचिकाकर्ता-प्रबंधन से भूमि राजस्व के बकाया के रूप में वसूली हेतु विवादित वसूली नोटिस जारी किया। विवादित वसूली नोटिस से आहत महसूस करते हुए, याचिकाकर्ता-प्रबंधन ने इस न्यायालय में इन दो रिट याचिकाओं को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत दायर कर, वसूली के विवादित आदेश को अपास्त करने हेतु उत्प्रेषण-लेख की प्रकृति में एक रिट की मांग की है।

(9) नोटिस ऑफ मोशन जारी किया गया और उसके उपरांत प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3 की ओर से लिखित जवाब दायर किया गया और निजी प्रत्यर्थी संख्या 4 से 11 की ओर से एक अलग लिखित जवाब दायर किया गया।

(10) याचिकाकर्ता-प्रबंधन की और से वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह बताया कि चूंकि निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों ने दिनांक 19.3.2008 के आदेश(अनुलग्नक P-4) को चुनौती नहीं दी, वे किसी अन्य राशि के हकदार नहीं थे। जो भी राशि बकाया पाई गई थी वह पहले ही निजी प्रत्यर्थीगण को भुगतान कर दी गई थी। उन्होंने आगे तर्क दिया कि प्रत्यर्थी संख्या 1 ने मामले की विशेष परिस्थितियों पर अपना विवेक नहीं लगाया और निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों द्वारा मांगी गई समान राशि की वसूली का आदेश दिया। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 1 के समक्ष औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33-C(1) के तहत दायर किया गया आवेदन पोषणीय नहीं था क्योंकि देय राशि पहले ही उन्हें भुगतान की जा चुकी थी। उन्होंने इस बात को समाप्त करते हुए तर्क दिया कि प्रत्यर्थी संख्या 1 द्वारा पारित विवादित आदेश अधिकार क्षेत्र से बाहर था। वह इन दो रिट याचिकाओं को स्वीकार करके वसूली के विवादित आदेश को अपास्त करने की प्रार्थना करता है।

(11) इसके विपरीत, निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों के लिए विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क है कि विद्वान श्रम आयुक्त को आवेदन को सुनने और उस पर निर्णय लेने का अधिकार था, जिसे सही तरीके से निस्तारित करते हुए आपत्तिजनक आदेश दिया गया। वह यह भी तर्क देते हैं कि याचिकाकर्ता-प्रबंधन ने निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों को इस लंबी अवधि के दौरान अवांछित प्रताड़ित किया, जो दो दशकों से भी ज्यादा है। याचिकाकर्ता-प्रबंधन के संबंधित अधिकारियों ने श्रम विभाग के अधिकारियों को भ्रामक जानकारी दी, जिससे

सोनीपत की मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय में दर्ज शिकायत को अवैध रूप से वापस लिया गया। वह आगे यह भी दावा करते हैं कि हालांकि निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों को नियमितीकरण और अगले पदोन्नति के लिए भी पात्र पाया गया था, फिर भी वेतन के पिछले बकाया के वित्तीय लाभों का अवैध रूप से इनकार किया गया है, क्योंकि याचिकाकर्ता-प्रबंधन ने श्रम न्यायालय के अधिनिर्णय दिनांक 4.12.2002 को उसकी मंशा और भावनास्वरूप, जैसा कि इस न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा निर्देशित किया गया था, लागू नहीं किया है। वह तर्क देते हैं कि निजी प्रत्यर्थीगण की सेवाओं को नियमित करने के बावजूद, नियमित वेतनमान के पिछले बकाया को इनकार करने के लिए याचिकाकर्ता-प्रबंधन की कार्रवाई स्पष्ट रूप से अवैध थी क्योंकि यह इस न्यायालय की की खण्ड पीठ के निर्णय के विपरीत है, जिसमें याचिकाकर्ता-प्रबंधन द्वारा श्रम न्यायालय के अधिनिर्णय के खिलाफ दायर रिट याचिका को खर्चे के साथ खारिज कर दिया गया था। वह दोनों रिट याचिकाओं को भारी ख़र्चे के साथ खारिज करने की प्रार्थना करते हैं।

(12) राज्य की और से विद्वान अधिवक्ता ने भी उचित रूप से तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता-प्रबंधन ने, एक सरकारी उपक्रम होते हुए भी, निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों के साथ बहुत मनमाने तरीके से व्यवहार किया है। चूंकि श्रम न्यायालय के अधिनिर्णय दिनांक 4.12.2002 को उसकी मंशा और भावनास्वरूप, जैसा कि इस न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा निर्देशित किया गया था, लागू नहीं किया है, इसलिए औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33-C(1) के तहत आवेदन को सुनना विद्वान श्रम आयुक्त, हरियाणा-प्रत्यर्थी संख्या 1 का कर्तव्य था। वास्तव में, प्रत्यर्थी संख्या 1 के पास याचिकाकर्ता-प्रबंधन के विरुद्ध विवादित वसूली का आदेश पारित करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं था। प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3 की ओर से प्रस्तुत लिखित जवाब में किए गए अभिकथनों का संदर्भ देते हुए,

वह आगे तर्क देते है कि दोनों रिट याचिकाएं पूरी तरह से भ्रांतिपूर्ण है और वे भारी ख़र्चे के साथ खारिज किए जाने योग्य हैं।

(13) पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को काफी विस्तार से सुनने के पश्चात्, प्रकरण के अभिलेख का सावधानीपूर्वक अध्यन्न करने के पश्चात् और प्रतिस्पर्धी तर्कों पर विचार करने के पश्चात्, यह न्यायालय इस मत का है कि हस्तगत मामलों के विशेष तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, दोनों रिट याचिकाएं खारिज किए जाने योग्य हैं। ऐसा कहने के लिए, एक से अधिक कारण हैं, जिन्हें आगे यहां दर्ज किया जा रहा है।

(14) यह अभिलेख की बात है कि इस न्यायालय की एक खण्ड पीठ ने, अपने विस्तृत निर्णय दिनांक 8.10.2004 में, वर्तमान प्रबंधन द्वारा दायर सिविल रिट याचिका संख्या 11377 of 2004 को `10,000/- रुपये के ख़र्चे के साथ खारिज कर दिया था, जिसमें श्रम न्यायालय के अधिनिर्णय दिनांक 4.12.2002 को बरक़रार रखा गया, जबकि सिविल रिट याचिका संख्या 11022 of 2003 जो कि निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों द्वारा अधिनिर्णय के कार्यान्वयन के लिए दायर की गई थी, को मंजूर किया गया। इस न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा दिए गए निर्णय का संचालन भाग निम्नलिखित है:-

"यहाँ ऊपर निकाले गए निष्कर्ष के साथ मिलकर, यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा, कि प्रबंधन के विद्वान अधिवक्ता ने यह तथ्य विवादित नहीं किया, कि इसी तरह की स्थिति वाले व्यक्ति, जैसे की वर्तमान मामले के श्रमिक(जिनकी सेवाएँ उसी कारण से और उसी समय पर समाप्त कर दी गई थीं, जैसे कि यहाँ के श्रमिकों की HSEB द्वारा) ने प्रबंधन की कार्रवाई को उसी तरह से चुनौती दी थी जैसे कि यहाँ के श्रमिकों ने। श्रम न्यायालय, ने संदर्भ संख्या 437 of 1989 और 438 of 1989 का उत्तर देते हुए, श्रमिकों के पक्ष में दावे का निर्णय दिया था, जैसा कि उसी श्रम न्यायालय ने दिनांक 4.12.2002 के विवादित अधिनिर्णय के

माध्यम से दिया था। उपर्युक्त निर्णय को HSEB की ओर से प्रबंधन द्वारा सिविल रिट याचिका संख्या 10457 of 1992 के माध्यम से चुनौती दी गई। इस न्यायालय ने अपने निर्णय दिनांक 6.11.1996 में, HSEB की ओर से प्रस्तुत सभी तर्कों को खारिज कर दिया। उपर्युक्त निर्णय को बाद से अंतिमता प्राप्त हो गई और उसमें शामिल श्रमिकों को तब से HSEB की नौकरी में पुनःस्थापित और नियमित किया गया। उपर्युक्त के मद्देनजर, प्रबंधन के भाग पर श्रम न्यायालय के विवादित अधिनिर्णय दिनांक 4.12.2002 को चुनौती देना न केवल दुर्भाग्यपूर्ण है अपितु पूरी तरह से अनुचित है।"

उपर्युक्त को देखते हुए, हमें सिविल रिट याचिका संख्या 11377 of 2004 में कोई योग्यता नहीं पाते है, जिसे यहाँ ख़र्चे के साथ खारिज किया जाता है, जिसकी मात्रा 10,000/- रुपये है, जो श्रमिकों को श्रम न्यायालय के अधिनिर्णय दिनांक 4.12.2002 के अनुसरण में उनके देय के साथ देय होगी। उपर्युक्त निर्धारण का स्वाभाविक परिणाम यह है, कि सिविल रिट याचिका संख्या 11022 of 2003 को स्वीकार किया जाना चाहिए। उपर्युक्त निर्दिष्ट तथ्यों के क्रम से यह प्रकट होता है कि श्रम न्यायालय का अधिनिर्णय दिनांक 4.12.2002 इतने लंबे समय तक बिना किसी औचित्य के लागू नहीं हुआ है। इस मामले की सुनवाई के दौरान, हमें सूचित किया गया कि राज्य सरकार ने भी आपत्तिजनक अधिनिर्णय के कार्यान्वयन न होने के कारण HSEB के अपराधी अधिकारियों के खिलाफ अभियोजन को मंजूरी दे दी है। उपर्युक्त वर्णित विशेष परिस्थितियों में, हम हरियाणा राज्य विद्युत बोर्ड के सचिव के उत्तराधिकारी को आदेश देते हैं कि वह श्रम न्यायालय के अधिनिर्णय दिनांक 4.12.2002 को उसकी मंशा और भावनास्वरूप, आज से एक महीने के भीतर लागू करे, न केवल श्रमिकों को सेवा में पुनर्स्थापित करके अपितु उन्हें उनके देय भी देने के लिए, जो उन्हें श्रम न्यायालय के अधिनिर्णय दिनांक 4.12.2002 के अनुसरण में देय हैं और साथ ही इस

निर्णय के माध्यम से उन्हें दिए गए ख़र्चे के रूप में भी। उपर्युक्त शर्तों अनुसार निस्तारण किया जाता है।"

(15) इस न्यायालय की खण्ड पीठ के उपर्युक्त निर्णय से आहत महसूस करते हुए, याचिकाकर्ता-प्रबंधन ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय में विशेष अनुमति याचिका दायर की और सिविल अपील संख्या 683 और 684 का निस्तारण दिनांक 20.1.2005 के आदेश (अनुलग्नक P-3) के माध्यम से किया गया, जो इस प्रकार पढ़ा जाता है:-

“आदेश

"नोटिस जारी करें।

सुश्री चंदन रमनमुरथाही, विद्वान अधिवक्ता, केविएट पर उपस्थित हैं और श्रमिकों की ओर से नोटिस स्वीकार करती हैं।

अनुमति दी गई।

पक्षकारों को सुना गया।

यह उचित रूप से स्वीकार किया गया है कि पूर्व मामले में केवल 40 प्रतिशत पीछे की मजदूरी प्रदान की गई थी और जैसा कि मांग केवल 22 जनवरी, 1993 को उठाई गई थी, पीछे की मजदूरी केवल उस तारीख से दी जा सकती है। इस प्रकार हम उच्च न्यायालय के निर्णय को संशोधित कर निर्देश देते हैं कि केवल 22 जनवरी, 1993 से 40 प्रतिशत पीछे की मजदूरी का भुगतान किया जाएगा। उपर्युक्त के अलावा कोई अन्य आदेश नहीं होगा। अपील इस प्रकार निस्तारित की जाती है। ख़र्चे के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।”

(16) जब श्रम न्यायालय का अधिनिर्णय दिनांक 4.12.2002 वर्तमान याचिकाकर्ता-प्रबंधन के विरुद्ध अंतिम हो गया, तो उसने एक पूर्णतः अनुचित और चतुराईपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया। निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों को पीछे के वेतन से वंचित करने के उद्देश्य से, दिनांक

19.3.2008 का आदेश(अनुलग्नक P-4) पारित किया गया। हालांकि, आदेश दिनांक 19.3.2008(अनुलग्नक P-4) के माध्यम से प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों को पुनर्स्थापित किया गया और उनकी सेवाओं को दिनांक 2.9.1994 से नियमित किया गया, फिर भी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों को वेतन की बकाया राशि के वास्तविक वित्तीय लाभों से वंचित करने की कोशिश की गई। आदेश दिनांक 19.3.2008 (अनुलग्नक P-4) का अपराधजनक खण्ड (iv) निम्नलिखित है:-

"(iv) अधिकारी को उनके नियमितीकरण की मानी गई तिथि से वेतन निर्धारण का लाभ दिया जाएगा। हालांकि वेतन निर्धारण केवल काल्पनिक होगा और कोई बकाया नहीं दिया जाएगा।"

(17) उपर्युक्त वर्णित खण्ड(iv) स्पष्ट रूप से इस न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा दिए गए विशिष्ट और स्पष्ट निर्देशों और साथ ही माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित उपर्युक्त आदेश की भावना के विरुद्ध भी। यह कहने के पश्चात्, इस न्यायालय को कोई संकोच नहीं है कि याचिकाकर्ता-प्रबंधन के संबंधित अधिकारियों को देश के कानून का कोई सम्मान नहीं था। यही सटीक कारण था कि राज्य सरकार को याचिकाकर्ता-प्रबंधन के जिम्मेदार अधिकारियों द्वारा विद्वान श्रम न्यायालय द्वारा पारित अधिनिर्णय का अनुपालन ना करने के लिए, उनके अभियोग के लिए स्वीकृति प्रदान करनी पड़ी।

(18) हालांकि, यह प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता-प्रबंधन के संबंधित अधिकारी न केवल न्यायालयों और न्याय प्रदान प्रणाली को हल्के में ले रहे थे, अपितु स्वयं को कानून से ऊपर मान रहे थे और वे सुधार से परे भी थे। ऐसा इसलिए कहा जाता है, क्योंकि याचिकाकर्ता-प्रबंधन के संबंधित अधिकारी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों को 22 वर्षों से अधिक लंबी अवधि के लिए और विशेष रूप से श्रम न्यायालय के अधिनिर्णय दिनांक 4.12.2002 के पारित होने के

पश्चात्, जिसे 12 वर्षों से अधिक की अवधि समाप्त होने के पश्चात् भी उसकी मंशा और भावनास्वरूप लागू नहीं किया गया है,, अधिकतम परेशानी में डालने पर तुले हुए थे। यह केवल दुर्भाग्यपूर्ण ही नहीं अपितु एक आदर्श नियोक्ता की ओर से पूरी तरह से अनुचित है, विशेष रूप से जब वह एक कल्याणकारी राज्य का उपक्रम हो।

(19) याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा उठाए गए प्रत्येक तर्क पर विचार किया गया है लेकिन उनमें से कोई भी स्वीकार्य नहीं पाया गया, क्योंकि सभी बिना किसी सार के थे। चूंकि याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह जोर दिया है कि प्रत्यर्थी संख्या 1 के पास औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33-C(1) के तहत आवेदन को सुनने का क्षेत्राधिकार नहीं था, इसलिए उसके प्रावधानों का उल्लेख करना उपयुक्त होगा। औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33-C(1) का संबंधित भाग इस प्रकार पढ़ा जाता है:-

धारा 33-C. नियोक्ता से धन की वसूली।- (1) जहाँ किसी श्रमिक को नियोक्ता से एक समझौते या अधिनिर्णय के तहत या अध्याय VA या अध्याय VB के प्रावधानों के तहत कोई धन प्राप्त होना है, तो वह श्रमिक स्वयं या उसके द्वारा लिखित रूप में अधिकृत कोई अन्य व्यक्ति, या, श्रमिक की मृत्यु के मामले में, उसके हस्तांतरणकर्ता या वारिस, किसी अन्य वसूली ढंग को प्रभावित किए बिना, उसे प्राप्त होने वाले धन की वसूली के लिए उचित सरकार के समक्ष एक आवेदन कर सकता है, और यदि उचित सरकार संतुष्ट होती है कि कोई धन इस प्रकार प्राप्त होना है, तो वह उस राशि के लिए कलेक्टर को प्रमाणपत्र जारी करेगी जो उसी को भूमि राजस्व के बकाया के रूप में वसूल करने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाएगा।"

(20) उपर्युक्त कानून के प्रावधानों के मात्र अवलोकन से ही कोई संदेह नहीं रह जाता है कि चूंकि निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों को याचिकाकर्ता-प्रबंधन से, अधिनिर्णय दिनांक

4.12.2002 के तहत धन प्राप्त होना था, इसलिए प्रत्यर्थी संख्या 1 के पास ना केवल न्यायक्षेत्र था अपितु औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33-C(1) के तहत निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों के आवेदन को सुनना उसका कर्तव्य भी था। वर्तमान मामले की परिस्थितियों के दृष्टिगत, प्रत्यर्थी संख्या 1 ने औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33-C(1) के तहत निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों के आवेदन को सुनने में और विवादित वसूली के आदेश को पारित करके और उसे बनाए रखने में कोई कानूनी त्रुटि नहीं की जो कि बरक़रार रखने योग्य है। औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 33-C(1) की अन्यतः विपरीत व्याख्या, औद्योगिक विवाद अधिनियम के उद्देश्य और योजना के विरुद्ध होगी और साथ ही स्पष्ट विधायी मंशा के भी।

(21) जहां तक याचिकाकर्ता-प्रबंधन के वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा 19.3.2008 की तारीख के आदेश (अनुलग्नक पी-4) के संबंध में उठाए गए तर्क का प्रश्न है, तो वह खारिज किए जाने योग्य है, क्योंकि यह योग्यता से वंचित पाया गया है। चूंकि 19.3.2008 की तारीख के आदेश (अनुलग्नक पी-4) के उपर्युक्त आपत्तिजनक खंड(iv) को, श्रम न्यायालय के अधिनिर्णय दिनांक 4.12.2002 की सही मंशा, 8.10.2004 को इस न्यायालय की एक खण्ड पीठ द्वारा पारित निर्णय और साथ ही 20.1.2005 को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध आदेश में डाला गया था, उस का कोई परिणाम नहीं होगा और उसे पूरी तरह से अनदेखा किया जाना चाहिए।

(22) इसके अलावा, अनुलग्नक पी-4 में इस आपत्तिजनक खंड(iv) को निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों की हानि के लिए नहीं पढ़ा जा सकता। इस मामले की विशेष परिस्थितियों में, निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों से इसे चुनौती देने की उम्मीद नहीं थी, क्योंकि वे श्रम न्यायालय के अधिनिर्णय दिनांक 4.12.2002 के कड़े कार्यान्वयन की मांग करके,

अपने उचित मामले को सही ढंग से पेश कर रहे थे। इन परिस्थितियों में, यह निश्चित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि याचिकाकर्ता-प्रबंधन पूरी तरह से अनुचित और सबसे मनमाने दृष्टिकोण से आगे बढ़ा, कम से कम कहने के लिए। इसलिए, याचिकाकर्ता-प्रबंधन की आपत्तिजनक कार्रवाई न तो तथ्यों पर और न ही कानून में बनाए रखी जा सकती है।

(23) याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों द्वारा राशि के कथित गलत गणना के संबंध में उठाए गए तर्क को निराधार पाया गया है। बहस के दौरान, जब याचिकाकर्ता-प्रबंधन के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता से यह स्पष्ट प्रश्न किया गया कि याचिकाकर्ता-प्रबंधन के अनुसार सही गणना क्या थी, उनके पास कोई उत्तर नहीं था और वह उचित रूप से इसलिए था, क्योंकि याचिकाकर्ता-प्रबंधन ने उसके द्वारा तैयार किया गया कोई भी गणना-पत्रक अभिलेख पर प्रस्तुत नहीं किया है।

(24) निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों की ओर से एक विस्तृत लिखित जवाब दायर किया गया है और याचिकाकर्ता-प्रबंधन ने उसके प्रत्युत्तर में कोई प्रतिक्रिया दायर नहीं की है। निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों की ओर से लिखित जवाब में प्रारंभिक आपत्तियों के जिम्मन 3 (e) और (f) में लिए गए विशेष और श्रेणीबद्ध अभिकथन, जो कि अभिलेख पर अविवादित हैं, उन्हें निम्नलिखित रूप से पढ़ा जा सकता है:-

e) यह कि प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों को भुगतान के लिए योग्य माना जाता है, जैसा कि नीचे है:

Sr. No.	Period	Amount
1.	22.01.1993 to 01.09.1994	40% of the DC rate.
2.	02.09.1994 to 04.12.2002, the date of award	40% of salary in regular scale, as fixed above in the table.
3.	05.12.2002 to 01.11.2004	Full salary in regular scale, as fixed above in the table for the post R.W.M.
4.	02.11.2004 to 22.02.2005	Full salary in regular scale, as fixed above in the table for the post of A.L.M.
5.	23.02.2005 to 31.05.2009	Difference of salary of daily wagers/ R.W.M. and A.L.M. in regular scale.

(f) हालांकि, याचिकाकर्ता ने दिनांक 22.01.1993 से 31.05.2009 तक की अवधि का वेतन केवल डी.सी. रेट के अनुसार ही भुगतान किया।"

(25) राज्य के विद्वान अधिवक्ता, याचिकाकर्ता-प्रबंधन द्वारा की गई प्रार्थना का विरोध करने में पूरी तरह से उचित थे। आधिकारिक प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3 द्वारा उनके लिखित जवाब में और विशेष रूप से प्रारंभिक आपत्तियों के जिम्मन 5 से 8 में किए गए अभिकथन, जो कि अभिलेख पर अविवादित हैं, यहाँ उल्लेख किए जाने योग्य हैं और उसका संबंधित भाग निम्नानुसार पढ़ा जाता है:

“यहाँ यह कहना प्रासंगिक है कि याचिकाकर्ता-प्रबंधन ने आदेश दिनांक 19.3.2008 (अनुलग्नक P-4) के माध्यम से निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों को सेवाओं में वापस लिया और उनकी सेवाओं को दिनांक 2.9.1994 से नियमित किया। नियमितीकरण के आधार पर निजी प्रत्यर्थीगण दिनांक 2.9.1994 से डी.सी. दर के बजाय नियमित वेतनमान के 40 प्रतिशत के हकदार थे और इसलिए उत्तरदाता के कार्यालय द्वारा सही तरीके से वसूली प्रमाणपत्र (अनुलग्नक P-10) जारी किया गया था।

चूंकि याचिकाकर्ता-प्रबंधन द्वारा उक्त अधिनिर्णय दिनांक 4.12.2002 (अनुलग्नक P-1) के अनुसार भुगतान नहीं किया गया था, इसलिए निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों ने औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा धारा 33-C(1) के तहत दिनांक 10.4.2012 (अनुलग्नक P-7) को उत्तरदाता के समक्ष पैसे की गणना के लिए आवेदन प्रस्तुत किया। उत्तरदाता द्वारा पत्र दिनांक 17.8.2012 के माध्यम से उक्त आवेदन को जांच और रिपोर्ट के लिए उप-श्रम आयुक्त, रोहतक को भेजा गया था।

उक्त उप-श्रम आयुक्त ने पक्षों को सुनने के पश्चात् अपने पत्र दिनांक 26.10.2012 के माध्यम से उत्तरदाता को अपनी रिपोर्ट भेजी, जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया कि "श्रमिक, श्रम न्यायालय के अधिनिर्णय और माननीय पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के तत्पश्चात् निर्णयों के अनुपालन में दिनांक 4.12.2002 से दिनांक 20.1.2005 तक की अवधि के लिए 'पूर्ण वेतन' के हकदार हैं। लेकिन जैसा कि प्रत्यर्थीगण द्वारा स्वीकार किया गया है, उपर्युक्त अवधि के लिए भुगतान डी.सी. दर के 40 प्रतिशत पर किया गया है। इसलिए, 4.12.2002 से 28.2.2005 तक की अवधि के लिए जो 60 प्रतिशत वेतन देय था, उसमें देरी हुई है और श्रमिक उसी के हक़दार है।

उपर्युक्त रिपोर्ट की प्राप्ति पर, मामले की जांच उत्तरदाता के कार्यालय द्वारा की गई और पाया गया कि याचिकाकर्ता-प्रबंधन ने विद्वान श्रम न्यायालय द्वारा आदेशित पूर्ण राशि का भुगतान नहीं किया है और इस प्रकार आपत्तिजनक वसूली प्रमाण पत्र दिनांक

8.2.2013 (अनुलग्नक पी-10) जारी किया गया और सोनीपत के कलेक्टर को याचिकाकर्ता-प्रबंधन से भूमि-राजस्व के रूप में वसूली करने के लिए भेजा गया।

उपर्युक्त तर्कों को देखते हुए, यह विनम्रतापूर्वक प्रार्थना की जाती है कि इस याचिका को न्याय के हित में कृपया खारिज कर दिया जाए।"

(26) एक आदर्श नियोक्ता के लिए यह उचित नहीं है कि वह अपने कर्मचारियों के साथ वैसा व्यवहार करे जैसा कि याचिकाकर्ता-प्रबंधन ने इस मामले में निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों के साथ किया है। प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों दो दशकों से अधिक समय तक एक वैध और उचित कारण के लिए मुकदमेबाजी कर रहे है। जहां तक दोनों पक्षों की वित्तीय क्षमताओं का प्रश्न है, तो श्रमिक नियोक्ता के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता। यही औद्योगिक विवाद अधिनियम के रूप में लाभप्रद कानूनी व्यवस्था के पीछे की मूल भावना है, जो श्रमिकों के कल्याण के लिए है।

(27) इस मामले में, याचिकाकर्ता-प्रबंधन को इस टाले जा सकने वाले मुकदमेबाजी के प्रत्येक प्रासंगिक चरण पर, औद्योगिक विवाद अधिनियम के वास्तविक उद्देश्य को हराने की दृष्टि से गलत आचरण करते हुए पाया गया है। कानून में यह स्वीकार्य नहीं है। कानून के न्यायालय ऐसी स्थिति में चुप दर्शक नहीं बन सकते। पक्षों के बीच पूर्ण और वास्तविक न्याय करने के लिए न्यायालय का यह परम कर्तव्य है। अपवादों को छोड़कर, न्यायालयों की प्रवृत्ति दबे-कुचले के पक्ष में होनी चाहिए क्योंकि अमीर लंबी मुकदमेबाजी का खर्च उठा सकते हैं लेकिन गरीब नहीं।

(28) इस मामले में, याचिकाकर्ता-प्रबंधन ने इस पूरी तरह से अनावश्यक मुकदमेबाजी पर सार्वजनिक समय और धन बर्बाद किया है, जिसे बार-बार निजी-प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों पर अधिरोपित किया गया है। याचिकाकर्ता-प्रबंधन की ओर से चलाई

जा रही यह वर्तमान बेईमान मुकदमेबाजी स्पष्ट रूप से कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। चूंकि इस न्यायालय ने याचिकाकर्ता-प्रबंधन की मंशा को सद्भावनापूर्वक नहीं पाया है और वर्तमान मुकदमेबाजी को लगभग निरर्थक कहा जा सकता है, इसलिए इन दोनों रिट याचिकाओं को खर्चे के साथ खारिज किया जाना चाहिए, ताकि निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों को कम से कम कुछ हद तक मुआवजा दिया जा सके।

(29) इस न्यायालय द्वारा खर्च अधिरोपित करने हेतु लिए गए दृष्टिकोण का समर्थन माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों से होता है, जैसे कि बिहार राज्य बनाम सुभाष सिंह[1], हरियाणा डेयरी विकास सहकारी महासंघ लिमिटेड बनाम जगदीश लाल[2], और इस न्यायालय की एक खण्ड पीठ के निर्णय जग राम बनाम वित्तीय आयुक्त (राजस्व), हरियाणा[3] और राजस्थान उच्च न्यायालय की एक खण्ड पीठ के निर्णय श्रीमती वंदना मीना बनाम राज्य राजस्थान एवं अन्य[4]।

(30) अन्य कोई तर्क पेश नहीं किया गया।

(31) उपर्युक्त दोनों मामलों के विशेष तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, और उपर्युक्त कारणों के साथ, इस न्यायालय का विचार है कि ये दोनों रिट याचिकाएं पूरी तरह से गलतफहमी पर आधारित हैं, योग्यता से रहित हैं और इनमें कोई सार नहीं है। इसलिए, इन्हें असफल होना चाहिए। हस्तक्षेप के लिए कोई मामला नहीं बनता है।

(32) परिणामस्वरूप, दोनों रिट याचिकाओं को खर्चे के साथ खारिज करने का आदेश दिया जाता है, जिसे प्रत्येक मामले में 50,000/- रुपये के रूप में निर्धारित किया गया है, जिसे

[1](1997) 4 S.C.C. 430
[2] (2014) 3 SCC 156
[3] (2000) 3 PLR 340
[4] 2000 AIR (Raj) 120

श्रम न्यायालय के अधिनिर्णय दिनांक 4.12.2002 के सख्त अनुपालन में, निजी प्रत्यर्थीगण-श्रमिकों को उनके अवैतनिक बकाया के साथ दिया जाना है। याचिकाकर्ता-प्रबंधन को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वह इस न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा दिनांक 8.10.2004 को पारित निर्णय का सावधानीपूर्वक अनुपालन, उसकी मंशा और भावनास्वरूप सुनिश्चित करें, बिना किसी और समय के नुकसान के और किसी भी स्थिति में आज से दो महीने की अवधि के भीतर। यह निर्देश याचिकाकर्ता-प्रबंधन द्वारा श्रम न्यायालय के अधिनिर्णय दिनांक 4.12.2002 के उचित कार्यान्वयन में की गई अनुचित देरी को देखते हुए जारी किया जा रहा है।

(33) इस आदेश को समाप्त करने से पूर्व, यह स्पष्ट किया जाता है कि याचिकाकर्ता-निगम के प्रबंध निदेशक को इस अनचाही, अनावश्यक और टाले जाने योग्य मुकदमेबाजी पर खर्च की गई सभी राशि को वसूल करने हेतु तथ्यात्मक जांच का आदेश देने की स्वतंत्रता होगी, ताकि विभाग के गलती करने वाले कर्मचारियों और अधिकारियों के वित्तीय दायित्व को अधिरोपित किया जा सके।

(34) इस प्रकार, उपर्युक्त टिप्पणियों और निर्देशों के साथ, दोनों रिट याचिकाएं ख़र्चे के साथ खारिज कर दी जाती हैं।

अस्वीकरण :-

स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय याचिकाकर्ता के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेज़ी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा।

ऋषभ अग्रवाल

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी, हरियाणा।

UID NO.:- HR0675